THE ECONOMIC TIMES

Date:15-07-19

Commendable move, needs more rigour

ET Editorials

The decision to create dedicated legislation on occupational safety and health as part of overhauling India's myriad labour laws is welcome. The draft combines provisions from 13 laws for different sector and extends the mandate to all establishments employing 10 or more people. Occupational safety and health are important for improved productivity and growth. However, the present code also goes into things like wages and conditions of work.

The Bill lists out the duties of employers and employees, working hours, annual leave with pay, the facilities that must be provided for healthy working conditions, maintain records, appointment of facilitators, special provisions for women and penalty provisions. It also provides for national and state occupational safety boards.

These are all steps in the right direction, and in keeping with international conventions and practices under the International Labour Organization. However, to make this effort effective, the government must consider a few changes.

Enforcement and timely revision of regulations and standards are among the weakest links for India. The draft Bill provides for facilitators, which could be any government official given this additional mandate. The government must consider setting up a dedicated agency under the ministry of labour to deal with developing standards, monitoring establishments, and enforcement of standards across the economy. The proposed occupational safety boards could continue to guide the agency at the national and state level.

The drafting of the law is less than rigorous. If the employer is responsible for the health of the worker, as the Code says, he must provide at least health insurance. This would overlap with the Employees State Insurance healthcare and Ayushman Bharat.

राष्ट्रीय सहारा

Date:14-07-19

कुंद पड़ा है पारदर्शी व्यवस्था का हथियार

राजकेश्वर सिंह

सूचना का अधिकार (आरटीआई) कानून देश का पहला ऐसा क्रांतिकारी कानून है, जो भारत के सभी नागरिकों को वह ताकत देता है, जो दूसरा कोई कानून नहीं देता। सरकार, शासन, प्रशासन में गहरी जड़ें जमा चुके भ्रष्टाचार को रोकने के लिए कामकाज में पारदर्शिता ही एकमात्र तरीका है। सरकारी कामकाज में पारदर्शिता के लिए आरटीआई कानून से बड़ा कोई दूसरा हथियार नहीं है, बावजूद इसके इस कानून का वह प्रभावी अमल नहीं हो रहा है, जो होना चाहिए था। यह कानून बने 14 साल हो गए हैं, मगर अक्सर इसके सकारात्मक पहलुओं से ज्यादा, इसके दुरुपयोग पर बहस होती रहती है, जबकि इस कानून के दुरुपयोग का कोई प्रामाणिक डाटा अभी तक सार्वजनिक नहीं है।

दरअसल, यह कानून सरकारी सिस्टम में दशकों से व्याप्त भ्रष्टाचार और उसे छिपाए रखने की प्रवृत्ति में सबसे बड़ी बाधा बनता है, लिहाजा सरकारी सिस्टम के लोग इसके सबसे ज्यादा खिलाफ हैं। अफसरों (जनसूचना अधिकारियों व प्रथम अपीलीय प्राधिकारियों) की उसी सोच का नतीजा है कि इस कानून के तहत सूचना मांगने वालों को सूचनाएं मिलना बहुत ही मुश्किल होता है। तय मियाद (30 दिन) के भीतर सूचना मिलना तो और भी ज्यादा बड़ी चुनौती है। इस कानून के प्रति सरकारी सिस्टम की सोच का अंदाजा इससे लगाया जा सकता है कि देश के सबसे बड़े राज्य अकेले उत्तर प्रदेश सूचना आयोग में इस साल मई तक 52 हजार अपीलें व शिकायतें लंबित थीं, जबकि पिछले साल मई में यह संख्या 42 हजार थीं। यह दर्शाता है कि इस कानून के प्रभावी अमल के प्रति जिम्मेदार लोग उदासीन हैं।

आरटीआई आवेदक को सही और समय से सूचना न देने पर दोषी को कानून में दंड का प्रावधान है। सूचना का अधिकार अधिनियम की धारा (20) में प्राविधानित है कि जहां केंद्रीय सूचना आयोग या राज्य सूचना आयोग की किसी परिवाद या अपील के विनिश्चय के समय यह राय हो कि केंद्रीय लोक सूचना अधिकारी अथवा राज्य लोक सूचना अधिकारी ने बिना किसी युक्तियुक्त कारण के सूचना के लिए निवेदन को लेने से इनकार किया है या विर्निदिस्ट समय के भीतर सूचना नहीं दिया है, साशय असत्य, अपूर्ण या बहकावापूर्ण सूचना दिया है अथवा निवेदित सूचना की विषयवस्तु को नष्ट किया है अथवा सूचना देने में किसी भी ढंग से बाधा डाला है, तो वह ऐसे प्रत्येक दिन के लिए दो सौ पचास रुपये प्रतिदिन के हिसाब से जब से सूचना के लिए निवेदन प्राप्त किया जाता है और जब सूचना दी गई है, जुर्माना लगाएगा, लेकिन जुर्माने की संपूर्ण राशि पच्चीस हजार रुपये से अधिक नहीं होगी। उक्त के अलावा आयोग जन सूचना अधिकारी के ऊपर लागू सेवा नियम के अधीन अनुशासनात्मक कार्रवाई की संस्तुति भी कर सकता है। इन कड़े दंडात्मक प्रावधानों के बावजूद आवेदकों को सूचनाएं मिलने में कोताही से साफ है कि बनने के 14 साल बाद भी कानून का असरदार अमल नहीं हो पा रहा है। इसके लिए वे निकाय ज्यादा जिम्मेदार हैं जिन पर कानून के तहत दोषियों को दंडित करने का

अधिकार है। इस मामले में भी पंजाब-हरियाणा हाईकोर्ट ने अपने एक फैसले में यह व्यवस्था दी है कि तय मियाद में सूचना न देने के दोषी जनसूचना अधिकारी को आयोग को अधिनियम की धारा 20 के अंतर्गत फैसला करना चाहिए। कोर्ट ने आयोग के उस फैसले को रद्द कर दिया, जिसमें जन सूचना अधिकारी को महज चेतावनी देकर छोड़ दिया गया था। आरटीआई कानून पर प्रभावी अमल का दारोमदार केंद्रीय सूचना आयोग और राज्य सूचना आयोगों पर है।

यह किसी से छिपा नहीं है कि सूचना आयुक्तों के पद कई बार बहुत ज्यादा दिनों तक खाली पड़े रहते हैं। सरकारें उन पर नियुक्तियों के प्रति उदासीन रहती हैं, जबकि सूचना आयुक्तों का फिक्स्ड टेन्योर (नियत कार्यकाल) होने के नाते सरकारों को पहले से पता होता है कि आयुक्तों के पद कब खाली हो रहे हैं, फिर सरकारें इस दिशा में उदासीन रहती हैं। यही वजह है सूचना आयोगों में आयुक्तों के पदों को भरे जाने के लिए कई मामले हाईकोर्ट के दरवाजे तक जा चुके हैं। हमारे देश के सरकारी सिस्टम में पारदर्शिता का प्रश्न शुरू से उपेक्षित रहा है, जबकि पारदर्शिता ही वह हथियार है, जिससे भ्रष्टाचार पर किसी हद तक अंकुश लगाया जा सकता है। हमारी नौकरशाही भी शुरू से ही प्राय: सरकारी जानकारियों को सार्वजनिक करने से ज्यादा उसे छिपाने की पक्षधर रही है। ज्यादातर नौकरशाह अपने सेवाकाल लगभग इसी राह पर चलते हैं, लेकिन सूचना आयोगों में मुख्य सूचना आयुक्तों और राज्य सूचना आयुक्तों के पदों पर नौकरशाहों की भरमार देखी जा सकती है। कई राज्यों में खासतौर से यह देखा जा सकता है जब मुख्य सचिव के पद से सेवानिवृत्त होने वाले अफसर ही मुख्य सूचना आयुक्त बना दिए गए। ऐसे भी राज्य हैं, जहां रिटार्यड मुख्य सचिव ही मुख्य सूचना आयुक्त होते रहे हैं। ऐसा नहीं है कि नौकरशाहों के मुख्य सूचना आयुक्त या सूचना आयुक्त बनाए जाने में कहीं किसी प्रकार की कोई बाधा हो। सूचना आयोगों में नियुक्तियों को लेकर सूचना का अधिकार अधिनियम की धारा 15 (5) में यह प्राविधानित है कि राज्य मुख्य सूचना आयुक्त और राज्य सूचना आयुक्त विधि, विज्ञान और प्रौद्योगिकी, समाजसेवा, प्रबंध, पत्रकारिता, जन संपर्क माध्यम या प्रशासन और शासन में व्यापक ज्ञान और अनुभव वाले समाज में प्रख्यात व्यक्ति होंगे।

स्पष्ट है मुख्य सूचना आयुक्त या राज्य सूचना आयुक्तों की नियुक्ति के लिए क्षेत्र की दायरा काफी व्यापक है, फिर कई बार ऐसी नियुक्तियों में नौकरशाही को तरजीह दिए जाने के उदाहरण मौजूद हैं। ऐसा देखने को मिलता है कि एक नौकरशाह अपने पूरे सेवाकाल में पारदर्शी व्यवस्था को बहुत ग्राह्य नहीं करती, जबकि सूचना का अधिकार अधिनियम अधिक से अधिक पारदर्शिता की राह खोलता है। ऐसे में जब सूचना का अधिकार कानून के प्रभावी अमल की जिम्मेदारी जब ऐसे अफसरों पर आती है तो उनका अतीत कहीं न कहीं उनके कार्यशैली को प्रभावित करता दिखता है। राज्य सूचना आयुक्त के रूप में अपने कार्यकाल के दौरान नौकरशाही से आयुक्त बने एक पूर्व अधिकारी ने बातचीत में यह स्वीकार किया कि यदि आयोग आरटीआई अधिनियम-2005 पर पूरी तरह अमल करने लगे तो इक्का-दुक्का ही जनसूचना अधिकारी होंगे जो दंडित होने बच पाएंगे। यह कथन उस धारणा को और मजबूत करता है कि कानून के प्रभावी अमल को लेकर जिम्मेदार लोग कहीं न कहीं अभी उदासीन हैं और आरटीआई की अपीलों व शिकायतों के निपटाने में पूरी तरह विधिसम्मत कार्यवाही के बजाय बीच के रास्ते खुले हुए हैं।

Live हिन्दुस्तान .com

Date:13-07-19

जलवायु परिवर्तन से जमीन को बचाने की चुनौती

मदन जैड़ा, (ब्यूरो चीफ)

जलवायु परिवर्तन के कई खतरों को हम रोज महसूस करते हैं। कुछ खतरे ऐसे भी हैं, जो प्रत्यक्ष नजर नहीं आते हैं, लेकिन वे भयावह रूप धारण कर सकते हैं। ऐसा ही एक खतरा है भूमि के बंजर होने का। बेमौसम बारिश, लगातार सूखा, रेतीली हवाओं का प्रवाह बढ़ने, रसायनों की अधिकता से जमीन में बढ़ते खारेपन आदि कारणों से जमीन बंजर होने लगी है। हाल के अध्ययन बताते हैं कि भारत समेत पूरी दुनिया में बंजर जमीन का प्रतिशत तेजी से बढ़ रहा है। संयुक्त राष्ट्र ने जलवायु परिवर्तन के अन्य खतरों के साथ-साथ इस मुद्दे को भी प्रमुखता से उठाया है। संयुक्त राष्ट्र तो बंजर भूमि के मुद्दे पर जल्द ही भारत में एक अंतरराष्ट्रीय बैठक आयोजित करने जा रहा है। अभी तक देश की 32.8 करोड़ हेक्टेयर भूमि में से 9.6 करोड़ हेक्टेयर जमीन बंजर भूमि है, जिसका दायरा लगातार बढ़ रहा है। अध्ययन बताते हैं कि यदि इसे नहीं रोका गया, तो अगले 10 साल में भारत में दो करोड़ टन खाद्यान्न उत्पादन घट सकता है। खाद्यान्न की कीमतें अतिरिक्त 30 फीसदी बढ़ सकती हैं।

स्टेट ऑफ इंडिया एनवायर्नमेंट रिपोर्ट 2017 में इसके कारणों की भी पड़ताल की गई है। इसके अनुसार, देश में करीब 30 फीसदी जमीन बंजर हो चुकी है। आठ राज्यों राजस्थान, दिल्ली, नगालैंड, त्रिपुरा, गोवा, महाराष्ट्र, हिमाचल प्रदेश और झारखंड में 40-70 फीसदी भूमि के बंजर होने का अनुमान है। बंजर होने का मतलब है कि उसमें कृषि या वानिकी संबंधी गतिविधियों का न हो पाना। यह चिंताजनक इसलिए भी है कि विश्व में बंजर भूमि का औसत 24 फीसदी है। यानी भारत पहले ही इस औसत को पार कर चुका है। संयुक्त राष्ट्र की हालिया रिपोर्ट के अनुसार, भारत समेत विश्व में सबसे ज्यादा शुष्क भूमि तेजी से बंजर हो रही है। सिंचित भूमि भी खराब हो रही है। लेकिन शुष्क भूमि पर खतरा ज्यादा है। दुनिया में करीब 41 फीसदी शुष्क भूमि है। इसका साढ़े पांच फीसदी भाग पहले से ही घोषित मरुस्थल है। लेकिन 34 फीसदी में कृषि गतिविधियां होती हैं, जिस पर करीब चार अरब लोग प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से निर्भर हैं। यानी विश्व की 90 फीसदी शुष्क भूमि विकासशील देशों में है। भारत में भी इसका एक बड़ा हिस्सा है।

इसके कारण कई बताए जा रहे हैं। पहला कारण है, बारिश नहीं होना और लगातार सूखा पड़ना। इससे धीरे-धीरे लोग उस पर खेती करना छोड़ देते हैं और एक समय बाद वह भूमि बंजर हो जाती है। दूसरा कारण है- अत्यधिक बारिश से भूमि की ऊपरी परत के काफी कटाव होने की वजह से उसका बेकार हो जाना। जलवायु परिवर्तन के प्रभावों के कारण जहां एक तरफ सूखा पड़ता है, वहीं कई जगह जरूरत से ज्यादा बारिश होती है और वह भी कुछ ही अंतराल में। इससे जमीन का कटाव बढ़ रहा है। तीसरा कारण है, धूल भरी हवाओं से भूमि का बर्बाद होना। यह देखा गया है कि रेगिस्तानी इलाकों से उठने वाली रेतीली हवाएं कई किलोमीटर दूर तक जमीन में फैल जाती हैं, जिससे धीरे-धीरे जमीन खेती के योग्य नहीं रह जाती। इसके अलावा ज्यादा गरमी बढ़ने या ज्यादा ठंड बढ़ने से भी कई क्षेत्रों से वनस्पतियां लुप्त हो रही हैं। कई जगह मानव गतिविधियों के कारण भी जमीन बंजर हो रही है। खासकर बढ़ते शहरीकरण और तमाम तरह की विकास

परियोजनाओं के चलते भी देश के कई हिस्सों में भूमि लगातार बंजर हो रही है। लेकिन पूरे देश में ऐसी भूमि सिर्फ एक फीसदी के करीब है, बाकी 29 फीसदी जमीन के बंजर होने की वजह जलवायु से जुड़ी है।

इस मसले पर होने वाली संयुक्त राष्ट्र की बैठक में नई रणनीति पर चर्चा होने की उम्मीद है, ताकि कोई रास्ता निकले। लेकिन भारत की तरफ से बॉन चैलेंज के प्रभावी क्रियान्वयन पर जोर दिए जाने की संभावना है। दरअसल, बॉन चैलेंज के तहत 2020 तक वनों के कटने के कारण 15 करोड़ हेक्टेयर जमीन को फिर से उपयोगी बनाना है। इस दिशा में भारत पहले ही हरियाणा, मध्य प्रदेश, महाराष्ट्र तथा नगालैंड में एक पायलट प्रोजक्ट शुरू कर चुका है। इसके अलावा मृदा स्वास्थ्य कार्ड, फसल बीमा योजना, प्रधानमंत्री सिंचाई योजना आदि भी इस दिशा में कुछ हद तक कारगर होते दिख रहे हैं। इसी प्रकार, कई देशों ने इस समस्या से निपटने के लिए अपने-अपने देशों में प्रयास किए हैं, जिनका आदान-प्रदान इस दौरान होगा।

जनसत्ता

Date:13-07-19

भीड़तंत्र के विरुद्ध

संपादकीय

पिछले कुछ सालों से भीड़ की अराजकता के जिस तरह के मामले सामने आ रहे हैं, उन्हें हिंसा की आम घटनाओं की तरह नहीं देखा जा सकता है। ये ऐसी घटनाएं हैं जो हमारे लोकतंत्र और कानून के शासन पर सवालिया निशान लगाते हैं। स्वाभाविक ही इस मसले पर तीखे सवाल उठे कि क्या सरकारें इसकी गंभीरता की अनदेखी कर ऐसी प्रवृत्ति को बढ़ावा नहीं दे रही हैं! सही है कि भीड़ की हिंसा के बाद मौजूदा कानूनों के तहत कार्रवाई हुई, लेकिन उसे ऐसी प्रवृत्ति पर लगाम लगाने से लेकर आरोपियों को सजा दिलाने तक के मामले में अपर्याप्त माना गया। इसलिए इस मसले पर अलग से कानून बनाने की मांग उठी। इसके अलावा, सुप्रीम कोर्ट ने साल भर पहले ही साफ लहजे में कहा था कि भीड़ की हिंसा को एक अलग अपराध की श्रेणी में रखा जाना चाहिए और सरकार इसकी रोकथाम के लिए एक नया कानून बनाए। शायद इसी के मद्देनजर उत्तर प्रदेश विधि आयोग ने सलाह दी है कि ऐसी घटनाओं को रोकने के लिए मौजूदा कानून प्रभावी नहीं है, इसलिए अलग से एक विशेष और सख्त कानून बनाया जाए।

आयोग के सुझाव के मुताबिक इस कानून का नाम उत्तर प्रदेश कॉम्बेटिंग ऑफ मॉब लिंचिंग एक्ट रखा जा सकता है। प्रस्तावित कानून के मसविदे में ड्यूटी में लापरवाही बरतने पर पुलिस अफसरों से लेकर जिलाधिकारी तक की जिम्मेदारी तय करने और दोषी पाए जाने पर सजा का प्रावधान करने का भी सुझाव दिया गया है। इसके अलावा, इसमें भीड़ के चेहरे में हिंसा करने वालों को सात साल से लेकर आजीवन कैद तक की सजा की व्यवस्था करने की बात शामिल की गई है। लेकिन इस तरह की हिंसा के मामलों में आमतौर पर पीड़ित और उसके परिवार के सामने पैदा हालात पर गौर नहीं किया जाता है। इस लिहाज से देखें तो उत्तर प्रदेश विधि आयोग ने प्रस्तावित कानून में भीड़ की हिंसा के शिकार व्यक्ति के परिवार और गंभीर रूप से घायलों के साथ ही संपत्ति नुकसान के लिए भी मुआवजे की व्यवस्था करने का सुझाव दिया

है। ऐसी घटनाएं फिर नहीं हों, इसके लिए भी पीड़ित व्यक्ति और उसके परिवार के पुनर्वास और पूरी सुरक्षा के इंतजाम किए जाने का भी प्रावधान करने की बात कही गई है।

गौरतलब है कि गोरक्षकों और भीड़ की हिंसा और किसी की हत्या कर देने के मसले पर सुप्रीम कोर्ट कह चुका है कि कोई भी नागरिक अपने हाथ में कानून नहीं ले सकता। यह राज्य सरकारों का कर्तव्य है कि वे कानून-व्यवस्था बनाए रखें। अदालत ने साफतौर पर कहा था कि लोकतंत्र में भीड़तंत्र की इजाजत नहीं दी जा सकती। हालांकि यह खुद सरकारों के लिए अपनी साख का सवाल है कि वे अपने दायरे में इस तरह की अराजकता और हिंसा पर पूरी तरह लगाम लगाएं, जिससे कानून-व्यवस्था की उपस्थिति साफ दिखे। यों भी किसी राजनीतिक पक्ष के नफा-नुकसान का मामला मान कर भी लंबे समय तक इनकी अनदेखी नहीं की जा सकती थी। लेकिन अफसोस की बात यह है कि कुछ राजनीतिकों की ओर से की गई बयानबाजियों की वजह से स्थानीय स्तर पर कुछ अराजक तत्त्वों को शह मिली और देश के अलग-अलग हिस्सों से गोरक्षा या फिर कोई खास नारा लगाने के नाम पर भीड़ की हिंसा और किसी हत्या के अनेक मामले सामने आए। इससे देश की छवि भी बुरी तरह प्रभावित हुई। इसलिए भीड़ की हिंसा पर रोक लगाने और इसके दोषियों के खिलाफ सख्त कार्रवाई की कानूनी व्यवस्था की जरूरत तत्काल महसूस की जा रही थी। इस लिहाज से देखें तो उत्तर प्रदेश विधि आयोग की पहल स्वागतयोग्य है।

The Indian EXPRESS
JOURNALISM OF COURAGE

Date:13-07-19

Law and beyond

Draft UP law against lynching is a welcome acknowledgement by the state of the gravity of the crime. It is only a first step.

Editorial

In July 2018, a Chief Justice of India-led bench of the Supreme Court delivered a stinging indictment of what it called "horrendous acts of mobocracy", and warned against violent vigilantism propelled by prejudice and hatred — "lynching" — becoming "the new normal". The Court directed the Centre to frame a law that dealt specifically with these crimes, and suggested the setting up of fast-track courts, lodging of FIRs without delay and framing of compensation schemes for victims and their families. The draft law submitted to Uttar Pradesh Chief Minister Yogi Adityanath by the UP State Law Commission would appear to take cognisance of the Court's directive. The Uttar Pradesh Combating of Mob Lynching Bill (2019) proposes imprisonment (upto 10 years for serious injuries and upto life imprisonment in case of death) and stringent fines for perpetrators, as well as those involved in planning and abetting lynchings. Significantly, it also criminalises the "dereliction of duty" by police officers and the district administration.

The draft law is welcome for the much-needed signal it sends out — there must be accountability for hate crime. Far too often, the mob lynching phenomenon, disturbingly ubiquitous since 2014, has been met by the ruling political formation by denial or, at times, with what could be described as tacit and symbolic

support. A report by IndiaSpend found that of all "bovine-related deaths" between 2011-2017, 97 per cent occurred after the BJP came to power in 2014. Take the murder of Mohammad Akhlaq in UP in 2015. The case, despite being before a fast-track court, has seen little progress. As on date, the court is yet to take cognisance of the charges framed against the accused. The accused in the case, out on bail, have been celebrated — one of them was even draped in the national flag after dying of natural causes. In fact, in January 2016, then BJP MP Yogi Adityanath said that Akhlaq should be charged (posthumously) for cow slaughter and the compensation his family received should be rescinded. There are incidents, across states, of the victims being charged by the police in cases of lynching, even as the will to arrest and prosecute the perpetrators seems weak. In this context, a state government-appointed commission in BJP-ruled UP does well to propose a law that recognises, first, that mob lynchings require urgent legislative and administrative intervention and, second, that police and administration must also share the blame for the climate that permits such violence.

But a new law can only be a first step. The state must follow it through. Then, in 2018, the apex court had also said "grandstanding of the incident by the perpetrators of the crimes including in the social media aggravates the entire problem". The political and social sanction for violence, in the name of the cow or accompanied by chants of "Jai Shri Ram", is integral to the sense of impunity that encourages the lynch mob. These can only be addressed with the active support of the political class and civil society.